RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-04
Issue-08
August-2019

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com[Peer Reviewed Journal]

हिन्दी दलित साहित्यः एक अवलोकन

डॉ. परषोतम कुमार

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, जम्मू–विश्वविद्यालय जम्मू–180006

वर्ण व्यवस्था भारतीय हिन्दू समाज की धुरि है। यह एक श्रेणीबद्ध शृंखला है, जहाँ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र क्रमशः प्रथम, द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ स्थान पर अवस्थित हैं। इन चार वर्णों के अतिरिक्त समाज में एक वर्ग ऐसा है जिसे वर्णव्यवस्था से बहिष्कृत, उपेक्षित तथा हाशिए पर रखा गया है। यह बहिष्कृत एवं हाशिये का समाज की वर्तमान में दलित समाज है। जिसे पंचमवर्ण, अछूत, अस्पृश्य, अवर्ण, अत्यज, हरिजन आदि नामों से संबोधित किया जाता रहा है। यह समाज वर्षों से वर्ण एवं जाति के आधार पर उत्पीड़ित एवं अपमानित होता आया है। इस उपेक्षित एवं हाशिये पर खड़े समाज के जटिल जीवन यथार्थ की अनुभूतिपरक प्रमाणिक अभिव्यक्ति ही दलित साहित्य का केन्द्रिय भाव है।

भारतीय हिन्दू समाज में व्याप्त जातिवादी व्यवस्था ने सभी वर्णों को एक–दूसरे से अलगाए रखा। परिणामतः इन वर्णों में आपसी सम्मान एवं भाईचारे की भावना का समुचित विकास सम्भव नहीं हो सका अपितु विशेष प्रकार की जातिवादी मानसिकता का निर्माण हुआ जिससे समाज में ऊँच–नीच, वर्ण–अवर्ण, श्रेष्ठ–कनिष्ठ सम्बन्धी धारणा सुदृढ़ होती गई। परिणामस्वरूप वर्ण–व्यवस्था के अन्तर्गत विभिन्न वर्णों एवं जातियों के लोग वर्ण–व्यवस्था से बहिष्कृत जातियों को नीच–हीन, तुच्छ, अछूत, अपवित्र, अस्पृश्य समझने लगे। इसी मानसिकता के कारण समाज में छुआछूत की समस्या का जन्म हुआ। यहीं से दलितों के शोषण की प्रक्रिया शुरू हुई। यह वर्ण–व्यवस्था देश की बहुसंख्यक आबादी के लिए कालांतर में अभिशाप सिद्ध हुई। वास्तव में हिन्दू वर्ण संरचना की जातिवादी व्यवस्था के प्रतिशोध में दलित साहित्य का सूत्रपात हुआ है। दलित साहित्य एक मुहीम है। यह सामाजिक न्याय के लिए एक वैचारिक आन्दोलन है। साहित्यकार हरिनारायण ठाकुर दलित साहित्य को मुक्ति के लिए एक प्रयत्न मानते हैं। उनकी दृष्टि में ''दलित साहित्य दलित चेतना की उत्कृट और सार्थक अभिव्यक्ति है। यह जिस संवेदना, मानवीय मूल्य और सरोकारों की बात करता है, उसकी जड़ में सामाजिक न्याय, जातीय समरस्ता, समता, बन्धुत्व और सम्मान की भावना निहित है।''[1]

कोशगत अर्थ के अनुसार जिस भी व्यक्ति, समाज, समुदाय का दलन, शोषण, दमन, उत्पीड़न हुआ है, जिसे अधिकारों से वंचित रखा गया है, वह दलित है। यद्यपि साहित्य के सन्दर्भ में दलित शब्द से अभिप्राय भारतीय संविधान की अनुसूचित जाति से है। भारतीय हिन्दू समाज में वर्ण–व्यवस्था से बहिष्कृत जातियों के लिए 'दलित' शब्द का प्रयोग किया जाता है। दलित साहित्यकार ओम प्रकाश वाल्मीकि के मतानुसार, ''दलित शब्द व्यापक अर्थ बोध की अभिव्यंजना देता है। भारतीय समाज में जिसे अस्पृश्य माना गया वह व्यक्ति ही दलित है।''[2] यदि दलित साहित्य के उद्‌भव पर विचार करें तो स्पष्ट होता है कि सर्वप्रथम मराठी भाषा में दलित साहित्य लिखा गया है। दलित पैंथर आन्दोलन की दलित साहित्य के विकास में अहम भूमिका है। सर्वप्रथम दलित साहित्यकारों ने दलित पैंथर को संगठित किया और फिर दलित पैंथर के कार्यकर्त्ताओं ने दलित साहित्य में चिंतन, मनन तथा लेखन कार्य शुरू किया। डॉ. अम्बेडकर के मुक्ति आन्दोलन ने दलितों में एक नई चेतना पैदा की। दलितों में चेतना दलित साहित्य के सृजन का मुख्य आधार है। वर्तमान में दलित साहित्य भारत की प्रत्येक भाषा में लिखा जा रहा है। विभिन्न साहित्यकारों की उत्कृष्ट रचनाएँ दलितों के जीवन के जटिल यथार्थ को विभिन्न कोणों से उजागर कर लोगों का ध्यान अपनी ओर खींच रही हैं। इन रचनाओं का मूल वर्ण संरचना के उन्मूलन में निहित है। समूचा दलित लेखन ब्राह्मणवाद के प्रतिरोध में खड़ा है तथा दलित मनुष्य के अस्तित्व की लड़ाई के लिए कमरबद्ध है। दलित मनुष्य के रूप में अपनी पहचान पाना चाहते हैं। मूलतः ब्राह्मणवादी मानसिकता और सामन्ती मूल्यों के विध्वंस में ही दलित अपनी मुक्ति का स्वप्न देख रहा है। लगभग 1962 के दौर में मराठी साहित्यकार दलितों के जीवन एवं समस्याओं को अभिव्यक्ति दे रहे थे परन्तु हिन्दी में दलित साहित्य का उदय लगभग 1990 के दशक के बाद सामने आता है। यद्यपि इससे पूर्व भी अनेक छुट–पुट दलित रचनाएँ उपलब्ध होती हैं लेकिन इनमें दलित चेतना का अभाव है। दलित साहित्य की शुरूआत हीरा डोम की कविता 'अछूत की शिकायत' से मानी जाती है। 'अछूत की शिकायत' कविता सन् 1914 ई. में 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। यह कविता भोजपुरी में लिखी गई है। 1994 ई. में प्रकाशित आत्मकथा 'अपने–अपने पिंजरे' को प्रथम दलित आत्मकथा माना जा सकता है। इसके पश्चात् ओमप्रकाश वाल्मीकि कृत 'जूठन', सूरजपाल कृत 'तिरस्कृत', 'संतप्त', रूप नारायण सोनकर कृत 'नागफनी', श्योराज सिंह बैचेन कृत 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर', तुलसीराम कृत 'मुर्दहिया', 'मणिकर्णिका', सुशीला टाकभौरे की 'शिकंजे का

RRIJM 2015, All Rights Reserved

दर्द' आदि महत्वपूर्ण दलित आत्मकथाएँ उपलब्ध हैं। आत्मकथा दलित साहित्य की जीवन्त एवं ज्वलन्त विधा है। यह आत्मकथाएँ दलित जीवन के विविध पहलुओं का प्रामाणिक दस्तावेज़ प्रस्तुत करती हैं। इनके माध्यम से सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य में एक नवीन भाव बोध, परिदृश्य एवं संवेदना का उद्रेक हुआ। जिससे साहित्य में नवीन भारतीय समाज एवं परिवेश उभरकर सामने आया। आज यह साहित्यिक विकासयात्रा आत्मकथा से आगे बढ़कर साहित्य की प्रत्येक विधा में निरन्तर विकसित हो रही है। दलित साहित्य ने एक विशाल लेखक वर्ग पैदा किया है। दलित साहित्यकार सामाजिक मुद्दों के अतिरिक्त धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षणिक, भूमण्डलीकरण, बाज़ारवाद, उदारीकरण आदि विषयों पर अपनी लेखनी चला रहे हैं। दलित साहित्य की आत्मा, दलित रचनाओं में वर्णित स्वाभिमान का प्रश्न है। सामाजिक स्तर पर एक मनुष्य के रूप में पहचान निर्मित करना प्रत्येक साहित्यकार का मुख्य लक्ष्य है। इस उद्देश्य की प्राप्ति तभी सम्भव है जब वर्ण एवं जातिविहीन समाज की स्थापना, सम्भव होगी। समतामूलक समाज निर्माण का सपना प्रत्येक दलित साहित्यकार की रचना का मुख्य कथ्य है। इन दलित साहित्यकारों में स्त्री साहित्यकारों की संख्या अभी कम है। परन्तु जो स्त्रियाँ साहित्य सृजन में संलग्न है। उनके लेखन में दलित स्त्री के मन की पीड़ा, व्यथा, शोषण, दमन एवं जातिगत अपमान का सूक्ष्म चित्रण उपलब्ध है।

हिन्दी में सुशीला टाकभौरे,, रजनी तिलक, विमल थोरात, रजतरानी मीनू आदि महत्वपूर्ण लेखिकाएँ हैं। पितृसत्तात्मक शोषण के साथ जातिगत उत्पीड़न की जीवंत अभिव्यक्ति इनकी रचनाओं में मिलती है।

दलित साहित्य की वैचारिकी पर यदि बात की जाए तो ज्ञात होता है कि समूचा दलित लेखन महात्मा बुद्ध, ज्योतिबा फूले, डॉ. भीमराव अम्बेडकर के विचारों पर केन्द्रित है। इसमें कोई मतभेद नहीं है, इस तथ्य से सभी दलित रचनाकार पूर्णतः सहमत हैं। सामाजिक आन्दोलन से सम्बन्ध मार्क्सवादी विचारक गेल ओमवेट लिखती हैं, ''वर्तमान समय में ये (दलित जातियाँ) फूले, अम्बेडकर तथा पेरियार जैसे नेताओं से प्रेरणा ग्रहण करती हैं।''[3]

सम्पूर्ण दलित साहित्य का एक मात्र स्वर है– सामाजिक परिवर्तन और अम्बेडकरवादी विचारधारा। ओमप्रकाश वाल्मीकि कहते हैं, ''जहाँ दलित रचनाकारों ने ज्योतिबा फूले को अपना विशिष्ट विचारक माना वहीं डॉ. अम्बेडकर को अपना शक्तिपुंज स्वीकार किया। ऐसा शक्तिपुंज जिससे समूचा दलित लेखन वैचारिक उर्जा ग्रहण करता है।''[4] वस्तुतः यह निर्विवाद सत्य है कि डॉ. अम्बेडकर और फूले के विचार ही वर्तमान दलित साहित्य आन्दोलन एवं दलित साहित्य का मेनीफेस्टो है। कुछ दलित विचारक दलित वैचारिकी का सूत्रपात चार्वाक दर्शन से मानते हैं। डॉ. धर्मवीर और डॉ. श्यौराज सिंह बैचेन दलित चिंतन की परम्परा चार्वाक दर्शन से मानते हैं परन्तु यह भी दलित विमर्श का उत्स अम्बेडकर में ही स्वीकार करते हैं। इस संदर्भ में ओमप्रकाश वाल्मीकि का कथन अधिक स्पष्ट और संगत प्रतीत होता है। वाल्मीकि लिखते हैं, ''दलित साहित्य को डॉ. अम्बेडकर के जीवनदर्शन ने वैचारिकी ऊर्जा दी है और तथागत बुद्ध की दार्शनिकता ने उसे सामाजिक दृष्टि दी, साथ ही ज्यातिबा फूले के जीवन–संघर्ष से उसे गहन प्रेरणा मिली है।''[5] अतः कह सकते हैं कि बुद्ध, फूले, अम्बेडकर यही दलितों के प्रेरणास्त्रोत हैं।

हिन्दी में दलित साहित्य के दो रूप उपलब्ध हैं– दलितों में चेतना और दलित–विषयक चेतना। दलितों की समस्याओं पर विचार–विमर्श दलित विषयक चेतना है और स्वयं दलितों का अपने जीवन यथार्थ, समस्याओं पर चिंतन–मनन की प्रक्रिया दलितों में चेतना कहलाती है। प्रारम्भ में दलित साहित्य उसे माना गया जिसमें दलित जीवन एवं दलित प्रश्न केन्द्र में थे। परन्तु कालान्तर में दलित साहित्य को लेकर दलित–गैरदलित साहित्यकारों में वाद–विवाद शुरू हुआ। दलित लेखक केवल दलितों द्वारा लिखे साहित्य को दलित साहित्य मानने लगे। वे गैरदलितों के दलित विषयक लेखन को सहानुभूतिपरक साहित्य कहकर खारिज करने लगे। उनके अनुसार जन्मना दलित ही दलित साहित्य की रचना कर सकता है। जो जन्मना अछूत अर्थात् दलित नहीं है, वह दलित साहित्य नहीं लिख सकता। इसी कारण उन्होंने हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध लेखकों का दलित समस्याओं पर केन्द्रित साहित्य को नकार दिया और प्रेमचन्द, निराला, नागार्जुन, अमृतलाल नागर, गिरिराज किशोर, श्री लालशुक्ल आदि को दलित साहित्य की परिधि से अलग कर उनकी संवेदना पर प्रश्न चिह्न लगाया।

डॉ. धर्मवीर, शयौराज सिंह बेचैन, मोहनदास नैमिशराय, वाल्मीकि आदि लेखकों का यही मत था। परन्तु परिस्थितियों से जूझने के पश्चात् इन लेखकों का एक वर्ग स्वीकारने लगा कि भले ही गैरदलित लेखकों का लेखन सहानुभूतिपरक है परन्तु दलित चेतना के संदर्भ में उनका विशेष योगदान है। हिन्दी दलित साहित्य के पुरोधा साहित्यकार ओम प्रकाश वाल्मीकि ने अपने जीवन के अंतिम पड़ाव में स्वीकार किया है कि भले ही प्रेमचन्द जैसे गैरदलित साहित्यकार की संवेदना पर हज़ारों सवाल उठाये जाएं लेकिन यह सत्य है कि प्रेमचन्द ने दलितों को अपने साहित्य में यथार्थ को स्वीकार्य बनाया तथा पाठकों की रूचि विकसित की। वह अनुभवजनित यथार्थ के लेखक हैं। दलित साहित्यकार उनकी रचनाओं से प्रेरणा ग्रहण करता है। निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि दलितों के उद्बोधन हेतु

RRIJM 2015, All Rights Reserved

लिखा गया साहित्य ही दलित साहित्य है, चाहे उसे लिखने वाला दलित वर्ग से है अथवा गैर दलित वर्ग से। वस्तुतः पूर्ण निष्ठा एवं ईमानदारी से निम्न जातियों के हितों की कामना के लिए रचा जा रहा साहित्य दलित साहित्य है। दलित साहित्य पिछड़े दमित समाज का हिमायती है और उनके मनुष्यत्व एवं स्वाभिमान की लड़ाई में उनके पक्ष में खड़ा है।

सन्दर्भ :–

1. हरिनारायण ठाकुर, दलित साहित्य का समाजशास्त्र, पृ. 59
2. ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, पृ. 14
3. गेल ओमवेट, दलित दृष्टि, पृ. 16
4. ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, पृ. 53
5. ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, पृ. 42

RRIJM 2015, All Rights Reserved